ISSN No. 2349-4654
नाद – नर्तन जर्नल ऑफ डांस एण्ड म्यूज़िक
वर्ष : 1, अंक : 1, नवम्बर 2014

विभिन्न रागों में रे प तथा प रे स्वर संगतियों का लगाव: एक विचार

डॉ. सुनीता भाले

एसोसिएट प्रोफेसर, इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़

सार-संक्षेप

संगीत एक प्रायोगिक कला है, अत: संगीत के प्रयोग पक्ष को लेकर मैंने कुछ लिखने का प्रयास किया है। स्वर संगतियों का शुद्ध लगाव किसी राग की स्थापना में कैसे सहायक हो सकता है और वही लगाव कुछ अनभिज्ञता से हो तो राग हानि हो सकती है, इस विचार को केन्द्र में रखते हुए मैने 'रे प' और 'प रे' इन स्वर संगतियों का विभिन्न रागों में प्रयोग किस-किस तरह से पाया जाता है, उसे रेखांकित किया है। 'संगीत' यह कला मौखिक विद्या रही है और अनादि काल तक रहेगी। नि:संदेह स्वरलिपि पद्धति ने हमारी इस परंपरा को सुरक्षित भी रखा है, परन्तु प्रायोगिक रूप से किसी राग को सीखने के उपरांत ही उस स्वरलिपि में लिखे स्वरों के अनुपात, लगाव, कण, मीडं और काकु का अनुपात समझ में आता है। अत: रागों को, बंदिशों के रखाव को, प्रायोगिक दृष्टि से सीखना ही महत्वपूर्ण है। इस विचार को कई कड़ियों में लिखा जा सकता है यथा—ग म रे सा भैरव, भैरवी, कान्हड़ा इन तीनों रागांगों में तथा नी प संगति सारंग, बहार, कान्हड़ा इन रागांगों में, ऐसी कई कड़ियों में इससे विचार का विस्तार किया जा सकता है।

शोध-पत्र

रंजयति इति राग: —अर्थात् रंजन करने की क्षमता जिस स्वर संगति में हो वह राग है। राग का शाब्दिक अर्थ अनुराग या प्रेम है। जिस सम्बन्ध से मन प्रसन्न, प्रफुल्लित हो वहाँ राग विद्यमान होता है। संगीत के सम्बन्ध में इसे यूं जोड़ सकते हैं कि स्वरों का आपसी सामंजस्य जब संतुलित और मधुर होगा तो वहाँ राग की स्थापना हो सकती है।

हमारे विद्वानों ने वर्षों के चिंतन और अनुसंधान के पश्चात् किसी स्वरावली को स्थिर करते हुए किसी एक विशिष्ट राग की रचना की होगी। उस स्वरावली को और विस्तारित करने हेतु किसी एक लयबद्ध रचना का सर्जन किया होगा जो आगे चलकर बंदिश कहलाई। राग का भिन्न-भिन्न स्वभाव प्रदर्शित करने के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार की रचनाओं का सर्जन हुआ होगा जो विलंबित या द्रुत बंदिशें कहलाई। जब कल्पनाशीलता वृद्धिगत होती गई तो पाँच-छह या सात स्वरों की कल्पना साकार हुई होगी। इसकी कई जोड़ियाँ बनी होगी अर्थात् मानव मन की कल्पनाशीलता की उड़ान थमने को तैयार न थी। सृजनशीलता मनुष्य की और विकसित होने लगी और उसी स्वरावली के लगाव, रखाव या कहन में अन्तर करने से भी नये-नये रंगों का आविष्कार होने लगा। इस लगाव, रखाव या कहन में कण स्वर और स्वरों के अनुपात की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। संगीत अनादिकाल से मौखिक विद्या रही है और आगे सदियों तक मौखिक विद्या ही रहेगी। स्वरलिपि या संगीत का स्वरांकन इस विषय को केन्द्र में रखते हुए अनेक दृष्टिकोणों से शोधकार्य हो रहे हैं। यदि हम वृहद् दृष्टिकोण से स्वर-लिपि इस क्रिया को देखें तो गायक द्वारा गाई गई ध्वनियों को चिन्हों में सुरक्षित रखना (Conversion of Sound) ऐसा कह सकते हैं। और फिर उन चिन्हों को देखकर अगले व्यक्ति द्वारा पुन: ध्वनियों का प्रकटीकरण, स्थूल रूप से स्वरलिपि का यही कार्य है, ऐसा हम कह सकते हैं। इस पूरी क्रिया में पहली पीढ़ी द्वारा गाई गई ध्वनियों को सुरक्षित रखने का प्रयास तो हुआ परन्तु अगला व्यक्ति उसे किस रूप में प्रकट कर रहा है? शुद्धता बनाये रखने में या बिगाड़ने में इस पीढ़ी की बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। उस काल में जब विज्ञान ने इतनी प्रगति नहीं की थी और संगीत को यथावत सुरक्षित रखने के लिये रिकार्डिंग जैसे उपकरण उपलब्ध नहीं थे, उस समय इन्हीं स्वरलिपियों ने हमें आधार दिया। परन्तु इन पंक्तियों को पढ़ने वाला प्रत्येक सुधि पाठक यह मानेगा कि आधार को आधार ही माने। कब हूबहू स्वीकार करना है और उसे समझ कर उसकी सूक्ष्मता को गहराई तक समझना है, उसके अनुपात को समझना है, इस नाज़ुक बिन्दु को केवल मौखिक रूप से सीखने वाला व्यक्ति ही समझ सकेगा। जिसने किसी राग की, किसी बंदिश की गायकी को सही ढंग से प्रायोगिक रूप से सीखा है, उस व्यक्ति को स्वरलिपि पद्धति में त्रुटियाँ अथवा अपूर्णता कभी भी नज़र नहीं आयेगी। चूंकि उसने स्वरों का लगाव और उनका अनुपात मौखिक रूप से सीखा है। राग रामकली में *मं प ध नी ध प* इस स्वरसंगति में प्रत्येक स्वर का अनुपात कितना है यह एक अच्छा उदाहरण हो सकता है, अथवा बिहाग की रागांग स्वर संगति *(प) ग म ग,* इसका वर्तमान में *प मं प ग म ग* रूप में प्रचलन। रागों की शुद्धता के लिये या उनके शुद्ध प्रकटीकरण के लिये स्वरसंगतियों का सही-सही लगाव एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उदाहरण के लिये *रे प* संगति का प्रयोग अनेक रागों में होता जैसे—मल्हार, कामोद, सारंग, नायकी कान्हड़ा, काफी, दुर्गा आदि। मूलत: स्वर संगति के पहले और बाद में किन-किन स्वरों का कैसा लगाव है, यह बहुत महत्त्वपूर्ण बिन्दु है। क्या उस बीच कोई ठहराव या अर्द्ध विराम तो नहीं हैं? निम्न उदाहरण इस बात को संभवत: और स्पष्ट कर सकेगा—

राग यमन – *ग [प]रे, ऩी रे (सा), ध़ ऩी रेग रे मं ग (प) मं ग परे ऽप मं ग*

इन दोनों उदाहरणों में *प रे* की संगति यमन को स्पष्ट करती है।

उपरोक्त उदाहरण में *रे प* का प्रयोग भी बड़े आराम से राग यमन में दिख रहा है, परन्तु यहाँ यमन में *रे प* संगति का प्रयोग नहीं माना जायेगा। कभी-कभी राग की बढ़त में संवाद बनाते समय भी ऐसे प्रयोग किये जाते हैं, जैसे उपरोक्त उदाहरण में रे के बाद एक अवग्रह अर्द्धविराम की सूचना दे रहा है। किसी भी राग में कोई स्वरसंगति जब बार-बार एक ही प्रकार से लगाई गई मिलेगी, तभी वह उस राग की विशेष स्वरसंगति मानी जाती है। क्वचित प्रयोग स्वर संगति के दायरे में नहीं आयेंगे। जैसे—मल्हार में *सा ग रे ऽ रे प* इस प्रकार स्वर *रे में म* का बड़ा कण, *रे* का दोहराया जाना फिर पंचम पर रिषभ के सहारे जाना, यही मल्हार की *रे प* संगति कहलायेगी। जबकि राग दुर्गा में *रे म प ध म रे प* इस प्रकार सीधी *रे प* संगति उसकी पहचान है। वहीं राग कामोद में *सा-रेप ऽग* कुछ धीमा है, और इस संगति में रे प का प्रयोग होने के बाद ग पर मींड से आना और फिर *ग म रे सा* इस प्रकार प्रयोग होना कामोद को स्थापित करता है। उदाहरण— कारे जाने ना दूंगी[1] इस बंदिश में प्रारंभ में रे प संगति का प्रयोग किया गया है जबकि धमार—लाल मोरी चूनर भीजेगी[2] में सम दर्शाने हेतु *रे प* संगति का प्रयोग किया गया है। राग नायकी कानड़ा की पारंपरिक रचना 'बनरा मोरा प्यारा' के प्रारंभ में ही रे प संगति का सीधा प्रयोग किया हुआ मिलता है।[3] इस रे प संगति का स्रोत कुछ विद्वानों के अनुसार सारंग है तो कुछ विद्वान इसका मूल स्रोत काफी से मानते है।

थाट की दृष्टि से भी काफी का विस्तार क्षेत्र बड़ा है, क्योंकि कान्हड़ा, सारंग, बागेश्री, बहार, मल्हार अंग के बहुत से राग काफी थाट के अन्तर्गत आते हैं।[4]

पारंपरिक दो स्वरमालिकायें प्रचार में हैं और दोनों में *रे प* संगति का प्रयोग किया हुआ प्राप्त होता है।

1. *ग़ ग़ रे सा रे। प ऽ। म प ध*[5]
2. *सा सा रे रे। ग़ ग़ म म। प - - म। प ध नी सां।*[6]
   नी ध प म। ग़ ग़ रे रे। रे प म प। म ग़ रे सा
3. 'एरि ए मैं कौने जतन सों' इस धमार में भी *रे प* संगति का प्रयोग प्राप्त होता है।[7]

इसी प्रकार प रे संगति भी भिन्न-भिन्न रागों में भिन्न-भिन्न प्रकार से लगाई जाती है। जैसे—राग यमन की *प रे* संगति उस राग की राग वाचक संगति कही जाती है। ध्यानपूर्वक यदि देखा जाए तो इस *प रे* संगति के लगाव में तीव्र मध्यम का स्पर्श स्पष्ट रूप से सुधि श्रोताओं को समझ में आता है। कई बार इतने बारीक कण स्वर को लिखना संभव नहीं हो पाता, परन्तु सही तालीम उस तीव्र मध्यम के स्पर्श का प्रयोग अवश्य करवायेगी।

इसके ठीक विपरीत राग छायानट की *प रे* संगति में शुद्ध मध्यम का अल्प किन्तु स्पष्ट प्रयोग सुधि कानों को सुनाई पड़ता है। यह प रे संगति धीमी और मींड युक्त है। यथा *रे ग म प ऽरे*।

राग गौड़ सारंग में उपरोक्त दोनों से भिन्न प रे संगति का प्रयोग होता है। यथा—*ग रे म ग प रे सा*। इसमें *प रे* संगति कुछ सीधी तरह से प्रयोग की हुई मिलती है। राग नंद में *गम प ध नी, प ध मं प ग म ध प रे सा,* इस प्रकार से सीधी परन्तु छोटी मींड युक्त *प रे* संगति प्रयोग की जाती है। जिसमें *रे* पर गंधार का बारीक कण का प्रयोग होता है। सारंग के प्रकारों में भी *प रे* संगति का प्रयोग होता है यथा—मदमाद सारंग में राग वाचक संगति के रूप में—

नी सा रे, रे म प रे, नी सारे रे सा।

बहुत ध्यानपूर्वक यदि देखा जाये तो सारंग में रिषभ का दीर्घत्व इस प रे की संगति को और प्रभावपूर्ण बनाता है। वृंदावनी सारंग में भी *'नी सां रें सां, प नी मप रे मप नी मप'* इस प्रकार परे संगति का प्रयोग प्राप्त होता है। स्पष्ट है कि यहाँ जितने भी उदाहरण है वे सभी परे संगतियां एक ही सप्तक की हैं। सप्तक बदलने से यमन, जयजयवंती, छायानट जैसे अनेक रागों की संख्या और विस्तार से जुड़ जायेगी।

स्वर संगतियों पर केन्द्रित इस विषय को कई कड़ियों में विस्तार से लिखा जा सकता है। मुख्य रूप से किसी भी राग में कोई स्वर संगति राग वाचक तभी होगी जब उसका बार-बार एक ही प्रकार से प्रयोग किया जावेगा। मैंने मौखिक क्रिया को काफी कुछ लिखने का प्रयास किया है। सतत अभ्यास से इन स्वर संगतियों की बारीकियाँ और समझी जा सकती हैं।

पाद टिप्पणियाँ

1. क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-4
2. क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-4
3. क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-6
4. अभिनव गीताजंलि भाग-5, प. रामाश्रय झा
5. क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-2
6. क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-1
7. क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-2

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

विष्णु नारायण भातखंडे, 1990, क्रमिक पुस्तक मालिका भाग - 4, संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद

वही

विष्णु नारायण भातखंडे, 1992, क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-6, संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद

रामाश्रय झा 'रामरंग', 2001 प्रथम संस्करण, अभिनव गीतांजलि भाग-5, संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद

विष्णु नारायण भातखंडे, 1985, क्रमिक पुस्तक मालिका भाग - 2, संगीत कार्यालय हाथरस

विष्णु नारायण भातखंडे, 1985, क्रमिक पुस्तक मालिका भाग - 1, संगीत कार्यालय हाथरस

वही